सच्चा योगी जीवन

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व-विद्यालय
माउण्ट आबू-307501 (राजस्थान)

सच्चा योगी जीवन

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय

पाण्डव भवन, आबू पर्वत (राजस्थान)

दो शब्द

कर्म-संन्यासियों का निवृत्ति मार्ग प्रसिद्ध है। इस मार्ग पर चलने वाले लोग जगत् को मिथ्या मानते हैं तथा संसार के सुखों को 'काग-विष्ठा' के समान मानकर घर-बार को तिलान्जली दे, ब्रह्म 'तत्त्व' से योग लगाते हैं। परन्तु चूँकि ब्रह्म-तत्त्व अचेतन है। किसी भी स्थिति में रहकर मनुष्य को कर्म भी करने पड़ते हैं, अत: कर्म-संन्यासियों का योग परमात्मिक योग नहीं है, क्योंकि परमात्मा तो चेतन स्वरूप हैं। फिर कर्मों का संन्यास भी ठीक नहीं क्योंकि दूसरों की कमाई पर निर्भर रहने से भी तो कर्म-बन्धन बनते हैं और फिर मनुष्य पर अकर्मण्यता का दोष आता है।

वास्तव में घर-बार में रहते हुए जीवन को कमल-पुष्प के समान बनाना ही प्रवृत्ति मार्ग के योगी का लक्ष्य है। इस मार्ग पर चलने वाले योगियों पर अकर्मण्यता का दोष नहीं लगता तथा ईश्वर का वास्तविक ज्ञान होने के कारण ही उनका बुद्धि योग ईश्वर से लगा रहता है। अत: **प्रवृत्ति मार्ग के योगियों का जीवन ही 'सच्चा योगी जीवन' कहलाता है।**

सच्चा योगी जीवन कैसे बने, इसके लिए किस प्रकार का पुरुषार्थ किया जाना चाहिए यह सब मैं अपने जीवन के अनुभव के आधार पर 'सच्चा योगी जीवन' नाम की इस छोटी-सी पुस्तिका के रूप में भेंट कर रहा हूँ ताकि 'योगी बनो तथा पवित्र बनो' का ईश्वरीय संदेश घर-घर पहुँच सके।

– जगदीश राम आनन्द

प्रकाशक एवं मुद्रक:
साहित्य विभाग, ओमशान्ति प्रेस, ज्ञानामृत भवन, शान्तिवन,
आबू रोड – 307 510, ☎ – 228125, 228126

© **Copyright :** Brahma Kumaris Ishwariya Vishwa Vidyalaya, Mount Abu (Raj.)
No part of this book may be printed without the permission of the publisher.

भारत का सच्चा प्राचीन योग और योगी जीवन

भारत का प्राचीन योग सारे संसार में प्रसिद्ध है। देश-देशान्तर से योग सीखने के अभिलाषी जिज्ञासु सच्चे योग की खोज में भारत आते रहते हैं। परन्तु वह योग कौन-सा था – यह रहस्य स्वयं भारतवासी भी भूल चुके हैं। बहुत समय से वह प्राचीन योग प्राय: लुप्त हो चुका है। इसके स्थान पर तत्त्व योगी अथवा हठयोगी ही देखने में आते हैं जो कि विदेशों में जाकर अपनी हठ क्रियाओं का प्रदर्शन भारत के प्राचीन योग के नाम से धन अथवा मान प्राप्त करने के लिए समय प्रति समय करते रहते हैं। परन्तु हठयोग क्रियायें आदि भारत का वह प्राचीन योग नहीं हैं जो कि गीता के भगवान ने सिखाया था।

जैसे 'वियोग' शब्द का अर्थ 'बिछुड़ना' अथवा अलग होना है, वैसे ही 'योग' का वास्तविक अर्थ है–परमपिता परमात्मा के साथ मनुष्यात्मा का सम्बन्ध जोड़ना अर्थात् परमात्मा की याद। तब भला इस रूहानी बुद्धियोग का प्राणायाम, नेती-धोती या हठयोग की अन्य क्रियाओं अथवा शारीरिक व्यायाम के आसनों (जिनको आजकल 'योग आसन' कह दिया जाता है) से क्या सम्बन्ध हो सकता है? सत्य तो यह है कि आज परमपिता परमात्मा के साथ किसी का भी योग नहीं है। मनोवैज्ञानिक नियम के अनुसार भी 'स्मृति' उसी वस्तु की हो सकती है या मन में याद उसकी ही समा सकती है जिसके नाम, रूप, धाम और कर्त्तव्य का पूरा ज्ञान-बुद्धि में हो। विचार की बात है कि 'आत्मा सो परमात्मा' या परमात्मा को 'नाम रूप से न्यारा' अथवा 'सर्वव्यापी' मानने वाले मनुष्य परमात्मा के साथ योग कैसे लगा सकते हैं? आत्मा और परमात्मा के सत्य ज्ञान के बिना कौन किससे योग लगायेगा? जब तक कि एक-दूसरे की पहचान न हो तब तक आपस में सम्बन्ध जुट नहीं सकता। जैसे कि कन्या की जब

तक सगाई न हो और वह अपने होने वाले पति के नाम, रूप और धाम को न जान ले, तब तक उसका सम्बन्ध अपने पति के साथ नहीं जुट सकता अर्थात् वह उसे याद नहीं कर सकती। अत: सच्चा रूहानी योगी वही है जिसे परमात्मा और उनकी रचना–मनुष्यात्माओं व सूक्ष्म देवताओं के बारे में पूर्ण ज्ञान हो। भारत का प्राचीन योग क्या है और उसे किसने और कब सिखाया था–यह सब रहस्य आगे स्पष्ट किये गये हैं जिनको जान लेने से ही 'सच्चा योगी जीवन' बन सकता है, अन्यथा नहीं।

एक ही 'प्राचीन-योग' के अनेक नाम

वास्तव में भारत का प्राचीन योग एक ही रूहानी सहज ज्ञान-योग है जिसे राजयोग, भक्तियोग, कर्मयोग और संन्यास योग इत्यादि नाम दे दिये गये हैं। परमात्मा की याद को ही 'योग' कहा जाता है जिसका अधिकार छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष और सभी मनुष्यमात्र को है। अवश्य ही वह योग सहज होना चाहिए कि हर कोई उसका अभ्यास कर सके और गृहस्थ-व्यवहार में रहते हुए भी हर कोई योगी बन सके। इसीलिए इसे 'सहज योग' और 'कर्मयोग' भी कहा जाता है। परम पवित्र, पतित-पावन परमात्मा के साथ योग लगाने के लिए जीवन में पवित्रता आवश्यक है जिसके लिए काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि इन सभी विकारों का संन्यास किया जाता है। इसी कारण इस योग को 'संन्यास योग' भी कहते हैं। परमात्मा के साथ योग लगाने के लिए तो विकारों का संन्यास ज़रूरी है, न कि कर्म-संन्यास। अत: कर्म-संन्यास तो कभी हो ही नहीं सकता। कर्म किये बिना तो मनुष्य एक क्षण भी नहीं रह सकता। कर्म-संन्यास नहीं बल्कि विकर्मों, पाप-कर्मों अथवा विकारों का संन्यास आवश्यक है। फिर जब तक परमात्मा के लिए मन में भावना व श्रद्धा न हो, उस प्रेम के सागर से प्रीति नहीं हो सकती। इसलिए सच्चा योगी वह

है जो उन पिताओं के पिता, पतियों के पति, गुरुओं के भी सद्‌गुरु से अपना बुद्धि -योग लगाता है। जबकि भावना का ही दूसरा नाम भक्ति है, अत: इस सहज बुद्धि योग को भक्ति योग भी इसीलिये कहते हैं। परमात्मा द्वारा सिखाये गए इस सहज योग को 'राजयोग' का नाम भी इसलिए दिया गया है क्योंकि इस योग के फलस्वरूप मनुष्यात्मा को नर से श्री नारायण, नारी से श्री लक्ष्मी अर्थात् देवी-देवता पद की प्राप्ति होती है। अत: योगी जीवन का यह लक्ष्य तो हर समय सभी के सामने रहना ही चाहिए।

परमेश्वर ही सच्चे योगेश्वर हैं

परमात्मा के साथ योग लगाने के लिए उनके साथ-साथ अपने बारे में भी सत्य परिचय अथवा ज्ञान की आवश्यकता है। वह ज्ञान एकमात्र ज्ञानसागर, त्रिकालदर्शी परमात्मा के पास ही हो सकता है। परमात्मा ही मनुष्यात्माओं को अपने वास्तविक नाम, स्वरूप, धाम तथा कल्याणकारी कर्त्तव्यों का परिचय देते हैं और उन्हें अपने साथ 'मन्मनाभव' अर्थात् योग-युक्त होने का आदेश देते हैं ताकि योगाग्नि से मनुष्यों के विकर्म दग्ध हों और वे पतित से पावन बन सकें। गीताशास्त्र जिसमें कि 'भगवानुवाच' शब्द है, वह भगवान द्वारा ज्ञान और योग सिखाये जाने की ही तो यादगार है। परन्तु भूल से गीता के सच्चे भगवान – निराकार परमात्मा 'शिव' के स्थान पर दैवी राजकुमार 'श्री कृष्ण' द्वारा उच्चारी मानने से गीता ही खंडित हो गई है जिससे ही मनुष्य सच्चे योगेश्वर परमात्मा शिव से विमुख हो गए और सच्चे योग से वंचित रह गये हैं। आप देखेंगे कि 'ज्ञानेश्वर' और 'योगेश्वर' शब्दों में 'ईश्वर' अर्थात् 'परमेश्वर' या परमात्मा का नाम आता है। इसका कारण यह है कि सर्वज्ञ परमात्मा ही ज्ञान और योग की शिक्षा देने वाले परमशिक्षक अथवा

सद्गुरु हैं। किसी भी देहधारी मनुष्य (मनुष्यात्माएँ अल्पज्ञ हैं) को 'योगेश्वर' नहीं कहा जा सकता। भारत के प्राचीन ज्ञान-योग को सर्व मनुष्यात्माओं के गति, सद्गति दाता, ज्ञानेश्वर और योगेश्वर अव्यक्तमूर्त ज्योतिर्बिन्दुस्वरूप परमात्मा 'शिव', जिनको 'रुद्र-भगवान' और 'सोमनाथ' भी कहते हैं, कल्प-कल्प (हर 5000 वर्ष के बाद) के हर 'संगमयुग' (कलियुग के अन्त और सतयुग के आदि के संधीकाल) में साकार प्रजापिता ब्रह्मा के साधारण शरीर रूपी रथ (भागीरथ) अर्थात् मनुष्य-तन में अवतरित होकर स्वयं सिखाते हैं। **वही अति धर्मग्लानि का कलियुग के अन्त का समय अब फिर आ गया है और परमात्मा शिव उस प्राय: लुप्त प्राचीन रूहानी योग को वर्तमान समय पुन: सिखा रहे हैं।**

योगी और भोगी जीवन में अन्तर

यदि मनुष्य योगी है तो वह भोगी नहीं हो सकता। योगी और भोगी जीवन में दिन-रात का अन्तर है। प्राय: धन-पदार्थ के सुखों को ही भोगी-मनुष्य जीवन समझ लेते हैं। परन्तु यह बात यथार्थ नहीं। धन-पदार्थ के सुख तो सौभाग्य के चिह्न हैं। श्री लक्ष्मी, श्रीनारायण इत्यादि देवी-देवताओं के पास भी तो अथाह धन-सम्पत्ति थी। भोगी जीवन विकारी जीवन को कहा जाता है। जो मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार रूपी माया अथवा विकारों के वश होकर अपना जीवन बिता रहे हैं उन्हें ही भोगी मानना चाहिए और जो मनुष्य देह-अभिमान को छोड़कर निज आत्मा के शुद्ध-स्वरूप की स्मृति में रह कर कार्य-व्यवहार करते हैं और जिनकी बुद्धि में एक ही निराकार (ज्योतिर्बिन्दु स्वरूप) परमात्मा शिव की याद समाई रहती है, उनका जीवन ही योगी जीवन माना जा सकता

है। पवित्रता और ब्रह्मचर्य को धारण किये बिना कोई भी मनुष्य योगी नहीं बन सकता।

सच्चा योगी कौन?

कर्म-संन्यासियों का निवृत्ति-मार्ग प्रसिद्ध है। यह लोग जगत् को मिथ्या मानते हैं और संसार के सुखों को 'काग-विष्ठा' के समान समझकर घर-बार छोड़ जाते हैं।

आज इन वैरागी साधुओं को योगी माना जाता है। यह लोग अपने-आपको ब्रह्मज्ञानी कहलाते हैं जबकि वे ब्रह्म की वास्तविकता को नहीं जानते। इनकी दृष्टि में सब-कुछ ब्रह्म की ब्रह्म है। यह लोग ब्रह्म को परमात्मा मानते हैं और ब्रह्म-योगी कहलाते हैं। ब्रह्म जो कि एक जड़ प्रकाश-तत्व है उसे भगवान् मानना व उस तत्व से योग लगाने वाले इन वैरागी संन्यासियों को योगी मानना कितनी बड़ी भूल है! वास्तव में न तो यह संसार मिथ्या है और न ही संसार के सुख मिथ्या हैं परन्तु संन्यासियों का यह मन्तव्य अवश्य ही मिथ्या है। मनुष्य को पतित बनाने वाले ये ही पाँच विकार हैं जिनको कि 'माया' कहा जाता है। इस माया का संन्यास ही वास्तव में संन्यास है। प्रवृत्ति मार्ग अर्थात् गृहस्थ-व्यवहार में रहते, परमात्मा से योग लगाते हुए कमल-पुष्प के सामन जीवन चलाने वाले निर्विकारी मनुष्यों को ही सच्चा योगी समझना चाहिए। कर्म-संन्यासी बनकर दूसरों की कमाई पर जीवन-निर्वाह करने वाले पर तो उल्टा दोष आता है। अत: प्रवृत्ति मार्ग ही सच्चा मार्ग है और प्रवत्ति मार्ग के योगियों को ही सच्चा योगी कहा जा सकता है।

ऐसा योगी कैसे बनें कि घर बार में रहते हुए और सब कारोबार करते हुए बुद्धि-योग एक परमात्मा से लगा रहे? परमात्मा स्वयं अवतरित होकर इसकी युक्ति सिखाते हैं। योग दर्शनों के पढ़ने व हठयोग की

क्रियाएँ सीखने से मनुष्य 'हठयोगी' व 'तत्व योगी' तो कहला सकता है परन्तु वह सच्चा योगी नहीं बन सकता। राज-सिंहासन पर बैठा हुआ भी कोई योगी बन सके, ऐसे सर्वोत्तम योग भगवान के सिवाय कोई और दूसरा नहीं सिखा सकता।

जो भी साधु व संन्यासी सिर मुंडवा कर घर-बार का संन्यास कर लेते हैं उन्हें वैरागी तो कहा जा सकता है, सच्चे योगी नहीं। सांसारिक दु:खों व कष्टों को देखकर कई व्यक्तियों को वैराग्य आ आता है और अन्य कई दूसरों को वे वैराग्य दिला देते हैं। कष्ट और दु:ख तो मनुष्य के अपने ही किये हुए पाप-कर्मों का फल होता है। उनका सामना न करके घबराहट में आकर संन्यास कर लेना कायरता है। पाप-कर्मों की दण्ड-भोगना से तो कोई भी बच नहीं सकता। घरबार का त्याग करने के बाद भी इन वैरागियों को अनेक कष्ट तो सहन करने ही पड़ते हैं। यह भी बीमार होते और दु:ख भोगते हैं। विचार करें कि क्या वह सारा दिन ही परमात्मा की याद में व्यतीत करते हैं? नहीं। उन्हें विकारी गृहस्थियों के घरों से भिक्षा माँगकर जीवन-निर्वाह करना पड़ता है। बेकारी के अतिरिक्त अन्न का दोष भी उन्हें अवश्य लगता है, कर्म-गति के अनुसार उन गृहस्थियों से उन संन्यासियों का कर्म-बन्धन जुट जाता है जिनके अन्न और धन से उनकी आजीविका चलती है जिसके फलस्वरूप उन्हें शरीर छोड़ने पर दोबारा उन गृहस्थियों के घर में जन्म लेना पड़ता है ताकि अपने कर्म-बन्धन का हिसाब चुका सकें। यह योगी मुक्ति अथवा मोक्ष की इच्छा तो रखते हैं परन्तु कर्म-गति के इस गुह्य रहस्य को न जानने के कारण बार-बार गृहस्थी-घरों में जन्म लेते और संन्यास करते उन्हें अनेक जन्म व्यतीत करने पड़ते जबकि सच्चे योगी का इस कलियुगी और पाप की दुनिया में पुनर्जन्म नहीं होता।

सहज ज्ञान योग

जप, तप, पूजा, पाठ, यज्ञ, हवन और तीर्थ-यात्रा इत्यादि सब कर्मकाण्ड हैं। भगवानुवाच है कि इनसे मेरी प्राप्ति नहीं होती। आसन, प्राणायाम इत्यादि भी शारीरिक क्रियाएँ हैं। उनका आध्यात्मिक योग में कोई सम्बन्ध नहीं। अत: बुद्धि-योग अर्थात् बुद्धि से परमात्मा की याद को ही सच्चा योग समझना चाहिए अर्थात् सब काम-काज करते हुए बुद्धि का योग परमपिता परमात्मा से लगा रहे। कहते हैं न कि 'हथ कार दे, दिल यार दे'। इसमें कोई कष्ट सहन नहीं करना पड़ता क्योंकि कोई शारीरिक यात्रायें इत्यादि करने की बात नहीं। इसलिए इसे 'सहज योग' और 'रूहानी यात्रा' भी कहा जाता है। परन्तु इस बुद्धि-योग के लिए यथार्थ ज्ञान का होना आवश्यक है।

वह ज्ञान कौन-सा है?

आजकल अनेक प्रकार की विद्याओं को ही ज्ञान समझ लिया जाता है। वैसे तो डॉक्टर, वकील इत्यादि बनने के लिए तरह-तरह का ज्ञान होता है। परन्तु सच्चा योगी बनने के लिए रूहानी ज्ञान की जरूरत है। वास्तव में रचयिता (परमात्मा) और उनकी रचना (ब्रह्माण्ड और सृष्टि) के आदि, मध्य और अन्त को जानना ही ज्ञान है। यह ज्ञान मनुष्य द्वारा बनाये गए वेद-शास्त्रों और ग्रन्थों में नहीं है। यह ज्ञान त्रिकालदर्शी, ज्ञानसागर, अव्यक्तमूर्त (अशरीरी), ज्योतिर्बिन्दु स्वरूप परमात्मा शिव कल्प-कल्प संगमयुगे इस साकार सृष्टि पर साकार प्रजापिता ब्रह्मा के तन में अवतरित होकर स्वयं ही देते हैं। मनुष्य-सृष्टि के बीज रूप, परमपिता परमात्मा से मिली इस दिव्य-बुद्धि से मनुष्य अपने-आपको और अपने अविनाशी पिता परमात्मा को पहचानने लगता है। क्योंकि निज स्वधर्म, स्वरूप तथा परमात्मा के नाम, रूप, धाम, दिव्य कर्त्तव्य व अपार गुणों के ज्ञान

की प्राप्ति हो जाने के बाद ही आत्मा की प्रीति परमात्मा से जुट सकती है। तीन काल, तीन लोक व सृष्टि-चक्र का ज्ञान भी आवश्यक है क्योंकि इसके बिना मनुष्य 'नष्टोमोहा' बन नहीं सकता।

आप जानते हैं कि बच्चे के दिल में अपने पिता के लिए प्यार तब ही उत्पन्न होता है जबकि वह पिता को पहचानने लगता है। योग भी आत्मा और पिता परमात्मा के बीच में रूहानी प्रेम के सम्बन्ध का नाम है। पूर्ण ज्ञान होने पर ही पूरा योग लग सकता है क्योंकि ज्ञान की प्राप्ति के बाद ही योग सहज लगाया जा सकता है। इसीलिए, इस योग को-'सहज ज्ञान-योग' का नाम दिया गया है।

अज्ञानी और मिथ्या ज्ञानी

संसार मे दो प्रकार के मनुष्य हैं–अज्ञानी और मिथ्या ज्ञानी। अज्ञानी उस बेसमझ मनुष्य को कहा जाता है जिसे आत्मा, परमात्मा और सृष्टि-चक्र का सत्य ज्ञान न हो। अज्ञानी मनुष्यों पर तो ''गंगा गए तो गंगाराम और जमुना गए तो जमनादास'' की उक्ति ठीक चरितार्थ होती है। वे अन्धश्रद्धा में हर बात को सत्य मान लेते हैं। बेचारे जहाँ-तहाँ माथा टेकते रहते हैं और जो कुछ सुनते हैं, 'सत्य वचन महाराज' कह देते हैं। मिथ्या ज्ञानी बहुत हठीले होते हैं। उल्टे मार्ग पर चलते हुए भी उन्हें अपना कितना मिथ्या अहंकार रहता है। उनमें भी कोई मन-मत, कोई गुरु-मत आदि भिन्न-भिन्न मतों पर चलते हैं। यह सभी मतें एक-दूसरे से नहीं मिलतीं, परस्पर एकमत न होने के कारण ही वे सदा झगड़ते रहते हैं। मिथ्या ज्ञान के कारण ही संसार में मत-मतान्तर फैले हुए हैं। वास्तव में परमात्मा की प्राप्ति का सत्य-मार्ग तो एक ही है जो परमात्मा स्वयं ही बताते हैं, परन्तु मिथ्या ज्ञानी अपने अनेक झूठे मार्गों को भी सत्य सिद्ध करने के लिए कह देते हैं कि परमात्मा को मिलने के अनेक मार्ग हैं। जबकि वे स्वयं भटकते

ही हैं लेकिन दूसरों को भी गलत मार्गों पर भटकाने के निमित्त बन पाप के भागी बनते हैं। सच्चा ईश्वरीय ज्ञान (श्रीमत) न होने के कारण उन पर 'अंधों ने हाथी देखा' वाली कहावत लागू होती है।

परमात्मा और मनुष्यात्माओं के बारे में यथार्थ ज्ञान

मनुष्यात्माएं अनेक हैं; उन सबका पिता परमात्मा एक है। परमात्मा अर्थात् 'परम-आत्मा'; हैं तो परमात्मा भी एक आत्मा जो अपनी सर्वशक्ति, ज्ञान, गुणों और परम कर्त्तव्यों के कारण सभी आत्माओं में 'परम' हैं।, 'आत्मा सो परमात्मा' अर्थात् आत्मा में स्वयं ही परमात्मा है, परमात्मा और आत्मा में कोई भेद नहीं–ऐसा मानना अयथार्थ है। परमात्मा और आत्माओं का आकार अर्थात् ज्योतिर्बिन्दुस्वरूप एक जैसा ही है। परमात्मा और आत्माएँ निराकार हैं परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि परमात्मा और मनुष्यात्माओं का कोई आकार ही नहीं है। परमात्मा भी चैतन्य है और मनुष्य-आत्माएँ भी चैतन्य हैं। चैतन्य का स्वरूप या आकार तो अवश्य ही होता है। अशरीरी या अव्यक्तमूर्त होने के कारण ही परम आत्मा को 'निराकार' कहा जाता है अर्थात् परमात्मा

का मनुष्यों अथवा सूक्ष्म देवताओं (ब्रह्मा, विष्णु और शंकर) जैसा कोई शारीरिक-रूप नहीं वरन् उनका निज स्वरूप ज्योतिर्बिन्दु है। आत्मा भी जब शरीर से अलग हो जाती है तो निराकार कहलाती है। निराकार की अपेक्षा परमात्मा को 'अव्यक्तमूर्त' कहना अधिक उचित है क्योंकि इससे अर्थ का अनर्थ नहीं हो सकता। इतनी-सी भूल ने आज मनुष्यों को अज्ञानी बना दिया है।

परमात्मा पतित-पावन, ज्ञान के सागर और ज्ञानदाता हैं। इससे यह स्मरण होता है कि परमात्मा भी मनुष्यात्माओं की तरह मन-बुद्धि सहित हैं। वह प्रेम का सागर और सर्वज्ञ हैं तो अवश्य ही अविनाशी संस्कारों वाले हैं। मनुष्यात्माओं और परमात्मा में भेद यह है कि परमात्मा जन्म-मरण के चक्कर में नहीं आते जबकि मनुष्यात्माएँ जन्म-मरण के चक्कर में आने के कारण पवित्र से अपवित्र, ज्ञानी से अज्ञानी, शान्त से अशान्त बनती हैं। परमात्मा को आत्माओं का पिता और रचयिता इसलिए कहा जाता है कि जब सब मनुष्यात्माएँ अज्ञान और विकारों के वश हो जाती हैं तब परमात्मा उन्हें पुनः शुद्धस्वरूप बना देते हैं। इसी कारण परमात्मा का नाम 'शिव' अर्थात् कल्याणकारी है। ब्रह्मा, विष्णु और शंकर-इन तीन सूक्ष्म देवताओं का रचयिता होने की वजह से परमात्मा को 'त्रिमूर्ति' कहा जाता है। परमात्मा को निराकार इसलिए भी कह दिया जाता है क्योंकि उनका रूप और आकार इन स्थूल आँखों (चर्म-चक्षुओं) से देखा नहीं जाता क्योंकि यह स्थूल आँखें पाँच तत्वों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) की बनी हुई हैं और ये भौतिक वस्तुओं को ही देख सकती हैं। इनके द्वारा आत्माओं और परमात्मा को नहीं देखा जा सकता। परमात्मा के अति सूक्ष्म बिन्दु-स्वरूप का साक्षात्कार दिव्य-दृष्टि से होता है। यह दिव्य-दृष्टि यानि तीसरा नेत्र भी परमात्मा स्वयं ही प्रदान करते हैं। साक्षात्कार

में परमात्मा का बिन्दु-रूप अग्नि व ज्योति-जैसे लाल सुनहरी रंग का, अथवा जैसे चढ़ते व छिपते सूर्य का रंग होता है,देखने में आता है। मन्दिरों में शिवलिंग परमात्मा शिव के बिन्दु-रूप की ही प्रतिमा है।

मनुष्यात्माओं का आकार भी इसी प्रकार का होता है। उनका रंग भी सुनहरा और उनकी चमक सितारों जैसी देखने में आती है। इन निराकार आत्माओं को 'सालिग्राम' कहा जाता है। मंदिरों में शिवलिंग के आसपास रखी जाने वाली बटियाँ (सालिग्राम) मनुष्य-आत्माओं के ही प्रतीक हैं। आत्माओं के संस्कार सतोप्रधान से सतो, रजो और तमो अवस्था में बदलते रहते हैं।

परमात्मा और आत्माओं का निवास स्थान –'परमधाम'

परमात्मा को 'पारलौकिक परमपिता' भी इसलिए कहते हैं कि वह परलोक निवासी हैं। परलोक अर्थात् इस स्थूल दुनिया से परे यानि दूर है। परलोक आकाश से पार सूर्य, चाँद व सितारों के प्रकाश से दूर, प्रकाश का एक बहुत बड़ा खंड है। वह प्रकाश हल्का लाल रंग का है। वह इस पाँच तत्व की दुनिया से निराला एक छठा सूक्ष्म-तत्व है जिसे 'ब्रह्म' अथवा 'अखण्ड ज्योति महतत्व' भी कहते हैं। ब्रह्मलोक, निर्वाणधाम अथवा शान्तिधाम उस परलोक के ही नाम हैं। ब्रह्मलोक आकाश के ऊपर चारों ओर छाया हुआ है। इस ब्रह्म में आकारी देवताओं की तीन सूक्ष्म पूरियाँ हैं जिनके नाम हैं – ब्रह्मापुरी, विष्णुपुरी और शंकरपुरी। इनके ऊपर 'शिवपुरी' है जिसे ही परमधाम अथवा परलोक कहा जाता है। यह परमात्मा का निजीधाम तो है ही पर यही आत्माओं का निवास-स्थान भी है। इसलिए जब कोई मनुष्य शरीर छोड़ता है तो यह मानकर कि उसकी आत्मा मुक्त हो गई और परमधाम को लौट गई है, मनुष्य

प्राय: कहते हैं वह 'परलोक सिधार गया।' वैसे भी आप विचार करें कि 'लोक' शब्द का अर्थ अनेक या एक से अधिक व्यक्तियों के रहने के स्थान को ही कहा जाता है। अत: परलोक परमात्मा और आत्माओं की निराकारी दुनिया है। ब्रह्मलोक के उस भाग को जिसमें निराकारी आत्माएँ और परमात्मा निवास करते हैं, 'ब्रह्माण्ड' कहते हैं। त्रिलोक में साकारी, आकारी और निराकारी दुनिया हैं, साकारी दुनिया शरीर-धारी मनुष्यों की दुनिया है जिसको ही 'मनुष्य लोक' कहते हैं। आकारी दुनिया सूक्ष्म देवताओं की दुनिया है जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और शंकर का निवास है। और निराकारी दुनिया रूहानी दुनिया को कहा जाता है। यहाँ आत्मायें परमात्मा के साथ निवास करती हैं।

योग के मुख्य तीन अंग

इस आध्यात्मिक अर्थात् रूहानी योग के तीन अंग हैं। परिचय, निश्चय और सम्बन्ध। योग के लिए सर्वप्रथम आवश्यक बात आत्मा और परमात्मा की पहचान अथवा परिचय है। परमात्मा के नाम, रूप , धाम व कर्त्तव्य के पूर्ण ज्ञान के बिना योग लग ही नहीं सकता। दूसरे, योग का आधार है निश्चय। जब तक बुद्धि में यह पूर्ण निश्चय नहीं है कि एक

परमात्मा ही दु:खों को हरने वाला और सुखों का दाता है, मनुष्य-आत्माओं की गति और सद्गति भी वही करता है और सम्पूर्ण पवित्रता सुख और शान्ति का उत्तराधिकार भी उस अविनाशी परमपिता से ही मिलता है, योग से यथार्थ लाभ नहीं मिल सकता। अत: इस निश्चय को पक्का करना चाहिए। जितना यह निश्चय दृढ होगा उतना ही बुद्धि योग पक्का रहेगा। योग का तीसरा अंग है–सम्बन्ध। पिता की प्रत्येक वस्तु पर बच्चों का जन्म -सिद्ध अधिकार होता है। भक्त भगवान से हर समय कुछ-न-कुछ माँगते रहते हैं। परन्तु भक्त की बजाय अपने-आपको परमात्मा की अविनाशी सन्तान मानने से कभी कुछ मांगने की दरकार नहीं रहती। अत: परमात्मा के भक्त (दास) बनने की बजाय उस पिता के साथ अपने वास्तविक सम्बन्ध की कि मैं उस परमपिता की सन्तान हूँ, को पहचानना सहज योग के लिए बहुत लाभदायक है। उस भंडारी से अपना पूरा हक प्राप्त करने के लिए उसे भगवान् कहने की बजाय 'बाबा' अर्थात् पिता कहना उचित है। क्योंकि यह नाता बहुत निकट का है। वैसे भी यदि बच्चा एक कदम बढ़ाए तो पिता दस कदम आगे बढ़ाकर उसे गोद में उठा लेता है। अत: मैं स्वर्ग के रचयिता परमपिता परमात्मा का पुत्र हूँ– इस बात का हमें कितना नशा रहना चाहिए! इसकी भेंट में स्वयं को भक्त कहलाना एक भिखारी के ही समान है।

योग में बैठने की विधि

योग में हाथ-मुँह धोकर व स्नान करके पवित्रता से बैठना ही उत्तम है। यदि बैठने का स्थान थोड़ा एकांत हो तो अच्छा है और अगरबत्ती व धूप आदि जलाने से वायुमंडल शुद्ध बनाया जा सकता है। बैठक भी सहज रीति से रखने से आप देर तक बिना थकावट आसानी-से बैठ सकते हैं। आँखें खुली रखने से नींद व सुस्ती नहीं सताती। अंधेरे के

समय कमरे में लाल रोशनी का बल्ब जलाने से परमधाम में अशरीरी होकर बैठने की महसूसता आती है। संगठन में बैठने से भी योग के लिए वातावरण अच्छा बन जाता है जो योग लगाने में सहायक होता है। अच्छे अभ्यासी के सामने बैठकर दृष्टि का बल लेना भी नये जिज्ञासु के लिये उपयोगी रहता है। ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय के सभी सेवाकेन्द्रों में इस योग का अभ्यास कराया जाता है।

शुद्ध संकल्पों में रमण

मन के संकल्पों को तो रोका नहीं जा सकता। संकल्प करना तो मन का स्वभाव है क्योंकि हर समय मन में कोई-न-कोई संकल्प चलता ही रहता है। योग से व्यर्थ और बुरे संकल्पों को रोका जाता है ताकि मन की वृत्ति शुद्ध-संकल्पों में लग सके। अभ्यास से योग में बैठते ही व्यर्थ व बुरे संकल्प रुककर, बुद्धि परमात्मा के प्रेम में जुट जाती है। प्रारम्भ में पुरुषार्थ करके भी इस प्रकार के शुद्ध संकल्प मन में लाने चाहिएं ताकि मन सांसारिक संकल्पों से उपराम हो जाये, जैसे कि–"मैं ज्योतिस्वरूप (बिन्दु-रूप) शुद्ध आत्मा हूँ, मूझ आत्मा ने यह शरीर धारण किया हुआ है। मैं इस शरीर से न्यारी एक चेतन शक्ति हूँ, मैं आत्मा परमधाम की रहने वाली हूँ, मेरा अविनाशी पिता, शिक्षक व सद्‌गुरु शिव परम-आत्मा है। मुझ आत्मा ने इस सृष्टि रूपी कर्मक्षेत्र पर पुण्य कर्म करने के लिए यह तन धारण किया हुआ है। अत: मुझे सदा पवित्र एवं हर्षित रहकर ही एक योगी जीवन व्यतीत करना है।

एक रस अवस्था

इस आत्म-चिन्तन से बुद्धि शरीर के भाव व शारीरिक सम्बन्धों से निकल संसार से उपराम हो जाती है। आँखों से सब-कुछ देखते व कानों से सुनते हुए भी ऐसी अवस्था रहती है जैसे कि कुछ भी देख व सुन नहीं

रहे। अब बुद्धि-योग को ऊपर परमधाम में ले जाना चाहिए जहाँ परमपिता परमात्मा का निवास स्थान है। बस, बुद्धि में केवल एक निराकार शिव भगवान् की याद रह जाये। इस प्रकार जब बुद्धि परमात्मा-चिन्तन में लग जाती है तब उसमें स्थिरता आ जाती है। जैसे आकाश में पतंग बहुत ऊँची जाकर बहुत डोलती नहीं बल्कि टिक-सी जाती है, वैसे ही योगी की बुद्धि भी सांसारिक संकल्पों व विकल्पों से निकलकर एक ही शुद्ध संकल्प अथवा परमात्मा के स्वरूप की स्मृति में टिक जाती है जिस अवस्था को एकरस अवस्था कह सकते हैं। उस समय सिवाय एक ईश्वरीय आनन्द के और कोई महसूसता नहीं रहती। बिना वायु के दीपक का उदाहरण भी योग की इस स्थिति के लिए ही दिया जाता है।

सच्ची उपासना व उपवास

प्राय: उपासना के लिए वेद-मंत्र उच्चारण किये जाते हैं अथवा किसी गुरु के दिये हुए मंत्र का जाप किया जाता है, पूजा और अर्चना की जाती है। अब अनुभव से पता चलता है कि यह सब-कुछ कर्मकाण्ड हैं। इनके द्वारा परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती। उपासना अथवा उपवास का अर्थ है परमात्मा के समीप जा बैठना। यह केवल बुद्धि-योग बल से भी तभी सम्भव हो सकता है जबकि बुद्धि में पूर्ण ज्ञान हो कि परमात्मा कौन है और कहाँ का निवासी है? परम-आत्मा को नाम, रूप से न्यारा और सर्वव्यापी मानने वाले कहाँ और किसके समीप बैठेंगे? शिव के उपासक भी प्रतिदिन शिवालयों में जाकर शिवलिंग की पूजा इत्यादि करते हैं परन्तु शिव का वास्तविक ज्ञान न होने के कारण उनका पुरुषार्थ किस काम का? क्योंकि बिना ज्ञान गति नहीं और ज्ञान से ही सद्गति गाई हुई है। योग साधना का गीत भी प्रसिद्ध है कि ''योग साधना के बिना कोई उसे पाता नहीं।'' योग और ज्ञान का बहुत गहरा सम्बन्ध है। ज्ञानी को योग में

बैठने अर्थात् सच्ची उपासना के लिए मुख से कुछ भी उच्चारण करने की जरूरत नहीं रहती क्योंकि उसे स्वत: ही निज स्वरूप की स्मृति के साथ ही निज शान्तिधाम की स्मृति भी आ जाती है। बुद्धि एकदम परमधाम में पहुँच जाती है। शारीरिक रूप में इस धरती पर बैठे हुए भी योगबल से उसकी बुद्धि ब्रह्माण्ड में चली जाती है (इस लोक और परलोक के बीच अनगिनत मीलों की दूरी का अन्तर गुम हो जाता है)। जैसे टेलीविजन पर दूर की वस्तु आँखों के सामने दिखाई देती है, वैसे ही आत्मा भी परमात्मा शिव तक बुद्धि-योग द्वारा पहुँच सकती है। यह है सच्ची उपासना।

योग द्वारा अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति

योग की इस अवस्था से जो मानसिक अतीन्द्रिय सुख मिलता है, उसे अनुभवी ही जान सकता है। इसीलिए कहा गया है कि यदि अतीन्द्रिय सुख पूछना हो तो गोपी-वल्लभ के गोप-गोपियों से पूछो। उस सुख की भेंट में शारीरिक इन्द्रियों के सुख बिल्कुल ही तुच्छ हैं। उस अलौकिक प्रभु-मिलन के सुख की अवस्था के आकर्षण से दिल खिंच जाता है और कभी-कभी तो प्रभु प्रेम में आँसू बह निकलते हैं। वास्तव में यह योग ही "इश्के हकीकी" है। इसमें मुख से परमात्मा की स्तुति व प्रार्थना की दरकार नहीं रहती । उन सम्राटों के सम्राट के साथ योग जुट जाने से मन तृप्त हो जाता है और इतना संतोष मिलता है कि मानो उसे पिता की सारी मिलकियत का उत्तराधिकार प्राप्त हो गया हो! सत्य मानिए कि यह बुद्धि-योग ही अल्लाह-अवल-दीन (विश्व का सर्व प्रथम सत्य धर्म स्थापन करने वाले परमात्मा) का चिराग है। पवित्रता-सुख-शान्ति, प्रेम, आनन्द, ज्ञान और शक्ति इत्यादि की रसनाओं से आत्मा हर प्रकार से भरपूर हो जाती है और अविनाशी गुणों के चिन्तन से आत्मा के संस्कार बदलते रहते हैं। योग की इस अवस्था को ही 'ईश्वर-प्राप्ति' कह सकते हैं जिसमें

इस सागर से सब-कुछ मिलता है। यह सुख गूँगे की मिठाई है जिसका कि वर्णन नहीं किया जा सकता।

शून्य समाधि और बुद्धि-योग में अन्तर

हठयोगी मन के संकल्पों को रोकने और आँखें बन्द रखने का प्रयत्न करते हैं क्योंकि उन्हें सन्नाटा अच्छा लगता है। वे उसे ही शून्य समाधि कहते हैं। ज्ञान-योग के अभ्यास में मन और बुद्धि दोनों काम करते हैं परन्तु उनकी उस समय सतोगुणी अवस्था रहती है। प्रेम का सागर परमात्मा जब प्रेम का जादू डालता है तब मन में एक निराले प्रेम की लहर दौड़ जाती है और दिल उमड़ आता है। वह ईश्वरीय सुख बहुत ही अद्‌भुत है, सांसारिक अथवा शारीरिक प्रेम से उसकी कोई भेंट नहीं। मन में पवित्रता की लहर उठने से शुभ भावनाएं जागृत हो जाती हैं। शुद्ध संकल्प आते हैं। आनन्द की मौज और मस्ती छा जाती है, चेहरे पर रौनक आ जाती है और शक्ति की प्राप्ति से आत्मिक बल बढ़ जाता है। योग से बुद्धि का ताला खुल जाता है जो कठिन समस्याओं का हल सहज ही मिल जाता है। ऐसी भासना आती है जैसे कि कोई चुपके-चुपके कानों में कोई रहस्य की बात बता रहा हो।

जिस प्रकार बिजली का कनेक्शन (Connection) मिल जाने से मनुष्य आवश्यकता के अनुसार हर प्रकार का लाभ ले सकते हैं–यदि गर्मी हो तो पंखा चला सकते हैं, सर्दी हो तो हीटर (Heater) लगाया जा सकता है और अंधेरे में रोशनी कर ली जाती है। वैसे ही बुद्धि-योग बल से सब मानसिक इच्छाएं पूरी हो जाती हैं। परमात्मा शिव जिनको 'भोला भंडारी' भी कहते हैं, स्वयं ही बच्चों को मालामाल कर देते हैं। अनुमान कीजिए कि शून्य-समाधि और बुद्धि-योग में कितना अन्तर है! शून्य-समाधि से अल्पकाल के लिए अल्प शान्ति मिलती है जबकि बुद्धि-योग

से मनुष्य हर प्रकार से जन्म-जन्मान्तर के लिए निहाल और मालामाल बनता है। वैसे भी जीवन में केवल शान्ति ही काफी नहीं, शान्ति के साथ सुख का होना भी आवश्यक है। क्योंकि यदि कोई गोता लगाने वाला सागर में गोता लगाकर कुछ समय बाद खाली हाथ बाहर निकल आए तो उससे क्या लाभ ? लाभ तब ही कहा जायेगा जब उसकी झोली मोतियों से भरी हो।

सूक्ष्म प्रेरणाएँ

जिस प्रकार स्थिर व निर्मल जल के सरोवर में झांकने से मुख का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई देता है और जो कुछ सरोवर की तह में हो वह ठीक-ठीक दृष्टि में आ जाता है और वायुमण्डल के शान्त होते ही रेडियो में आवाज ठीक सुनाई देती है, ठीक उसी तरह इस मन और बुद्धि की हालत है। यदि मन और बुद्धि दोनों पवित्र हों, तब ईश्वरीय प्रेरणाएँ मिलनी शुरू हो जाती हैं। त्रिकालदर्शी परमात्मा से बुद्धि का योग जुटा लेने से बुद्धि रेडियो की तरह सूक्ष्म प्रेरणाओं को पकड़ने लग जाती है। नये-नये रहस्य बुद्धि में खुलने लगते हैं, मानो प्रभु एक मित्र व सखा के रूप में सब-कुछ बता रहे हो। जैसे टेलीफोन एक्सचेंज में ० (शून्य) का नम्बर काम करता है वैसे ही परमपिता अपने योगी बच्चे का पूरी तरह रहबर (पण्डा) बनकर उसे गाइड करने लगते हैं। इसी प्रकार योग के बल से ज्ञान सागर परमात्मा को पकड़ा जा सकता है। साईंस की शक्ति योग शक्ति के चमत्कार के सामने तुच्छ है। तब क्यों न योगी जीवन बनाने का पुरुषार्थ करना चाहिए ? अतः योग-शक्ति को जितना बढ़ाया जाये उतना ही कम है।

निरन्तर योग का अभ्यास

योगाभ्यास बुद्धि का काम है जो सहज भी है और कठिन भी। कठिन

तब तक है जब तक कि पुराने विकारी संस्कार नहीं मिट जाते। संस्कारों को बदलने के लिए योग का निरन्तर अभ्यास आवश्यक है। योग को अग्नि भी कहा गया है। जैसे चने अथवा सख्त दालें तेज़ अग्नि की निरन्तर गर्मी में ही गलती हैं, इसी प्रकार कड़े संस्कार भी निरन्तर योग-अग्नि की निरन्तर गर्मी से ही दग्ध होते हैं। यदि आँखें बन्द करके योग लगायें तब तो एक कारोबारी मनुष्य सारे दिन में अधिक से अधिक दो-चार घंटा ही योग लगा सकेगा। इसलिए योगाभ्यासी को सदा आँख खोलकर योग में रहने का अभ्यास बनाये रखना चाहिए। तब ही रास्ते चलते वे योग में रह सकते हैं। ज्ञान और योग–दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। क्योंकि ज्ञान-बल से बुद्धि-योग सहज होता है। जहाँ ज्ञान से निरन्तर योग में मदद मिलती है वहाँ योग से ज्ञान की धारणा भी सहज हो जाती है। नहीं तो ज्ञान एक कान से सुना तो दूसरे कान से निकल जाता है। तभी बहुत से लोग "मौन" रखते हैं। वे समझते हैं कि इससे शक्ति मिलती है। माना कि मौन से शक्ति (Energy) का नाश नहीं होता। परन्तु कर्मयोगी के लिए बिल्कुल चुप रहने से भी काम नहीं चलता क्योंकि बिल्कुल मौन भी हठयोग हो जाता है। काम वह हो जो सहज में हो सके। कहावत भी है कि सहज मिले सो दूध बराबर। क्याोंकि किसी बात की अति में जाना भी ठीक नहीं। हाँ, ज़रूरत से ज़्यादा बोलना ठीक नहीं होता क्योंकि अधिक बोलने से शक्ति (Energy) नष्ट होती है और परमात्मा से बुद्धि योग टूट जाता है।

निरन्तर योग की युक्ति

कोई भी कार्य तब तक ही कठिन लगता है जब तक उसे करने का ढंग समझ न आ जावे। कर्मयोगी पर कछुए की मिसाल ठीक घटती है। जैसे कछुआ जरूरत के समय अपने अंग निकालकर कार्य करता है

और उसके बाद वह उनको पुन: समेट लेता है, ठीक उसी तरह कर्मयोगी को योग में रहकर कर्म करने चाहिएँ और केवल आवश्यक कर्म ही करने चाहिए। व्यर्थ कर्म करने के बजाय वह प्रभु से निरन्तर अर्थात् लगातार योग लगाये। देखा जाये तो 'लगातार' का भी अर्थ है कि योग का तार लगा रहे अर्थात् जुटा रहे। मौन का अर्थ भी है–मनन। मन में व्यर्थ सांसारिक बातें सोचने की बजाय मन में ईश्वरीय गुणों का मनन करना चाहिए ताकि वह दिव्य-गुण अपने में भी धारण हो सकें। संस्कारों को बदलना ही योग का लक्ष्य है। ज्ञान मनन करने से ही धारणा होती है। चलते-फिरते आत्म-चिन्तन और परमात्म-चिन्तन तब ही सम्भव है जबकि कम बोलने का अभ्यास किया जाये। जब तक पुराने बुरे संस्कार नहीं बदलते, तब तक यह समझना चाहिए कि बुद्धि स्वच्छ नहीं जो ज्ञान और योग को धारण कर सके। जैसे किसी मनुष्य को पौष्टिक पदार्थ खाने को मिलें और वह तब भी दुबला और कमजोर रहे तो समझा जाता है कि उसकी पाचन शक्ति ठीक नहीं। अत: उसका इलाज किया जाता है। वैसे ही बुद्धि को सात्विक और बलवान बनाने के लिए मौन में रह कर ज्ञान-मनन करने में लाभ है। जहाँ तक हो सके बुद्धि को भटकने नहीं देना चाहिए। सांसारिक बातों की ओर उतना ही ध्यान देना चाहिए जितना कि आवश्यक हो। हर बात में चौधरी बन बैठने वाले योगी नहीं बन सकते। यदि बुद्धि की लगन एक परमात्मा की ही ओर लगाये रखने का अभ्यास बना रहेगा, तब फिर योग लगाना नहीं पड़ेगा बल्कि योग स्वत: लगा ही रहेगा। हाँ, योग टूटे नहीं–बस, यह संभाल रखनी होगी। और अधिक बोलने वालों की दयनीय दशा बनी रहती है। उनका पेट नहीं भरता और वे भूखे ही रह जाते हैं। अत: योगी को वाणी पर पूरा कन्ट्रोल करना चाहिए। योगी जीवन में खाने, पीने, बोलने ओर सोने–इन सब बातों पर

काबू रखने का बड़ा महत्त्व है। यह सब स्वयं पर ध्यान देने और लापरवाही छोड़ने से स्वत: ही ठीक हो जाती हैं। यह अभ्यास भी केवल निश्चय-बुद्धि वाले ही कर सकते हैं। भगवानुवाच भी है–''निश्चय-बुद्धि विजयन्ति; संशय-बुद्धि विनश्यन्ति।'' जब तक योगी जीवन के लाभ तथा इसका उद्देश्य क्या है, बुद्धि में स्पष्ट न बैठा हुआ हो, निरन्तर योगी बनना तो बहुत दूर की बातें हैं।

एक ही समय में दो कार्य कैसे?

निरन्तर योग के बारे में कई मनुष्य प्रश्न करते हैं कि यह कैसे सम्भव है कि मनुष्य एक ही समय में योग में भी रहे और सांसारिक कार्य-व्यवहार भी करता रहे? एक ही समय में दो-दो कार्य हो सकते हैं? कर्म करते निरन्तर योग में रहना कोई एक म्यान में दो तलवार की बातें नहीं। यह कार्य सम्भव ही नहीं बल्कि सहज भी है, परन्तु इसके लिए सच्ची लगन और अभ्यास – यह दो बातें आवयश्क हैं। इनमें से भी लग्न का होना बहुत जरूरी है। लगन के होने से अभ्यास स्वत: और सहज ही हो सकता है। उदाहरण के लिए किसी व्यापारी को देखिए–वह घर में हो या बाजार में, उसकी बुद्धि में हर समय व्यापार की ही बातें चलती रहती हैं। तो क्या व्यापारिक बातें सोचने से वह घर का कोई कार्य नहीं करता या बाजार में चलते रास्ता भूल जाता है? जबकि एक स्त्री भी अपने पति की याद में रहकर घर के सब काम-काज करती रहती है और एक माता सब-कुछ करते हुए भी अपने बच्चे की याद नहीं भूलती तो क्या उस अविनाशी साजन की याद को बुद्धि में स्थित रखना कोई बहुत कठिन कार्य है? ऐसे ही पूरी लगन हो तो वह सच्चा साजन, सद्‌गुरु व प्यारा बाप कभी नहीं भूलेगा। थोड़ा-सा भी सुख देने वाले को जब मानव याद रखता है तब भला सद्‌गति-दाता, सच्चे रहबर की याद कैसे भूले? परमात्मा

कालों का काल और धर्मराज भी है। यदि मृत्यु याद रह सकती है तो धर्मराज भी कभी भूल नहीं सकता। अत: 'हथ कार वल, दिल यार वल' की कहावत पर ही अमल करना चाहिए। जबकि संसार की भी चिन्ताएँ मनुष्यों की बुद्धि में रात-दिन रहती हैं तो क्या प्रभु-चिन्तन सम्भव नहीं? सच्चे पर साहब सदा राजी रहता है, हाँ, केवल बुद्धि की डोरी उस प्रभु के हाथ में दे देने से ही सब कार्य स्वत: ही सिद्ध हो जाते हैं।

दिव्य-दृष्टि

आज संसार साईंस के चमत्कारों से बहुत प्रभावित है परन्तु यह रहस्य भुलाया जा चुका है कि योगबल विज्ञान की शक्ति से बहुत ऊँचा है, विज्ञान मनुष्य की बुद्धि का कमाल है जबकि योग परमात्मा का कमाल है। (परमात्मा द्वारा प्राप्त दिव्य-बुद्धि) दिव्यदृष्टि के मिल जाने से योगी घर बैठे लोक और परलोक का साक्षात्कार करने लगता है। मनुष्य-कृत टेलीविजन से तो केवल वर्तमान समय की घटनाओं को ही देखा जा सकता है जबकि दिव्य-दृष्टि से तो तीनों कालों के दृश्य देखे जा सकते हैं। यह जादूगरी उस परमात्मा की है जो त्रिकालदर्शी और त्रिनेत्री है। परमात्मा की महिमा तभी तो होती आ रही है क्योंकि उसने कभी तीनों कालों के नजारे दिखाए होंगे या कभी दिव्यदृष्टि का तीसरा नेत्र दिया होगा। विमान से तो केवल इस ही लोक में भ्रमण कर सकते हैं जबकि वह त्रिलोकीनाथ परमात्मा तो दिव्यदृष्टि द्वारा तीनों लोकों की सैर करवा सकता है। ये अल्पज्ञ वैज्ञानिक परलोक के बारे में क्या जानें? ब्रह्मापुरी, विष्णुपुरी और शंकरपुरी-इन तीनों अव्यक्त पुरियों की रंगत और दृश्य तो किसी ने कभी देखे भी न होंगे। वह दृश्य कितने लुभावने होंगे, यह तो अनुभवी ही बता सकता है! साक्षात्कार को ट्रांस कहते हैं। प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय में ऐसे ट्रांस में जाने वाले तथा

अलौकिक संदेश लाने वाले बहुत से संदेशी हैं। वैज्ञानिक जो काम ट्रांसमीटर से लेते हैं, योगी वही कार्य ट्रांस में जाकर लेते हैं। उपरोक्त ईश्वरीय विश्व विद्यालय के द्वारा ऐसे योगी हज़ारों की संख्या में बन रहे हैं।

राजयोग

इस सहज योग के अभ्यास से सम्पूर्ण सुख और शान्ति प्राप्त करने वाले को 'राजयोगी' कहा जाता है। राजयोगियों की दृष्टि में, शिवपुरी (मुक्तिधाम) तथा विष्णुपुरी (जीवन-मुक्तिधाम) अर्थात् शान्तिधाम और सुखधाम–दोनों एक साथ समाए रहते हैं। यहाँ के राजयोगी अगले जन्म में वैकुण्ठ में राजभाग प्राप्त करते हैं। इस जन्म में भी, उन्हें भविष्य में सूर्यवंशी सतयुगी राजकुमार बनने की खुशी का नारायणी नशा चढ़ा रहता है। ''अन्ते जैसी मति वैसी गति'' के सिद्धान्त के अनुसार वे इस कलियुगी व पुराने शरीर को छोड़ने के बाद मुक्तिधाम के रास्ते से इस सृष्टि पर नए स्थापन होने वाले वैकुण्ठ अर्थात् स्वर्ग में अटल-अखण्ड सुख और शान्ति से भरपूर राज्य-भाग्य प्राप्त कर लेते हैं। जिसको ही यथार्थ शब्दों में ''सौभाग्य'' अर्थात् स्वर्णिम भाग्य कहा जाता है। इसे ही ''नर से श्री नारायण और नारी से श्री लक्ष्मी पद की प्राप्ति'' कहा जाता है जो राजयोग के साधन द्वारा ही सम्भव है। सतयुगी सृष्टि के सुखों का महासौभाग्य राजयोगी ही प्राप्त करते हैं, तभी तो राजयोगी को बहुत श्रेष्ठ माना जाता है।

सत्संग

योगी का संग अवश्य ही अच्छा होना चाहिए। सत्संग की बहुत महिमा है। सत्संग का अर्थ ही है सत्य परमात्मा से मिलन। सच्चा तो वह एक ही है जो परमधाम में रहता है और सृष्टि अब 'झूठ खण्ड' बन चुकी

है, उसे सच्चखण्ड बनाता है। आज सत्संग-घर तो स्थान-स्थान पर हैं परन्तु परमात्मा से तो कोई मिलता नहीं। इन सत्संगों में परमात्मा की महिमा करते तो अवश्य हैं परन्तु उन्हें जानते नहीं। परमात्मा अवतरित होकर अपना परिचय स्वयं ही देते हैं। अपने से योग जुटाने का तरीका भी वह स्वयं ही बताते हैं। सत्सग वह है जहाँ सत् परमात्मा से संग कराया जाता हो अर्थात् केवल एक निराकार परमात्मा शिव से ही योग लगाना सिखाया जाता हो; जहाँ किसी मनुष्य-आत्मा की पूजा व आराधना न की जाती हो। क्योंकि अनेकों को याद करने वाले को 'व्यभिचारी' कहेंगे। अत: झूठे कलियुगी गुरुओं का संग छोड़ परमधाम के निवासी सच्चे सद्गुरु ज्योति-बिन्दु शिव से योग लगाना ही सच्चा सत्संग है।

अजपा जाप व सिमरण

अजपाजाप निरन्तर योग का ही दूसरा नाम है। इसे अजपा नाम इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसके लिए किसी भी मंत्र के जाप की दरकार नहीं और न ही माला हाथ में पकड़ने की दरकार है। इसमें तो अन्तर्मुखी होकर मन ही मन में परमात्मा के अपार गुणों का चिन्तन किया जाता है। रचयिता की याद में उस रचना की याद समायी हुई होती है। परमपिता परमात्मा को याद करते समय यदि उसका अविनाशी वर्सा याद रहेगा, तब ही शान्ति और सुख-दोनों ही उनसे मिल सकते हैं। क्योंकि केवल रचयिता को याद करने से शान्ति ही मिल सकती है, सुख नहीं। 'मन्मनाभव'–यह भगवान् का महामन्त्र है। वह आज्ञा देते हैं कि "मुझे श्वासों श्वास याद करो।" यही वशीकरण अर्थात् विकारों को वश करने का मंत्र है। वास्तव में इसका अर्थ मन और बुद्धि को परमात्मा की याद में लगाना है, मुख से कोई मंत्र उच्चारण करने की बात नहीं। याद मन से किया जाता है। इसी को अजपाजाप कहते हैं। मन और बुद्धि

परमात्मा की याद में निरन्तर लग जाने से कर्मेन्द्रियों से कोई पाप-कर्म नहीं होता। क्योंकि कर्म करने से पहले कर्म करने का संकल्प आता है। संकल्प मन में उत्पन्न होता है, उस पर बुद्धि निर्णय देती है कि वह कर्म किया जाये या नहीं। यदि मन-बुद्धि में परमात्मा की याद समायी रहेगी तब किसी भी बुरे संकल्प के उठने की बात ही नहीं रहती। मन को वश करने का अर्थ यह है कि इसमें कोई विकारी संकल्प अर्थात् विकल्प न आ जाए।

योग रूपी याद में परमात्मा के कर्त्तव्यों को भी स्मृति में रखा जाता है जिसको ही स्मरण कहा जाता है। परमात्मा के मुख्य कर्त्तव्य तीन हैं–नई सतयुगी सृष्टि की स्थापना, पुरानी आसुरी सृष्टि का विनाश और सतयुगी सृष्टि की पालना जो वह क्रमशः ब्रह्मा, शंकर और विष्णु के द्वारा करवाते हैं। परमात्मा त्रिकालदर्शी हैं क्योंकि वे तीनों कालों का ज्ञान देते हैं। इस दिव्य चिन्तन से हर प्रकार की सांसारिक चिन्ताएं मिट जाती हैं। यह चिन्तन अति सहज और स्वाभाविक बन जाता है क्योंकि यह काम बुद्धि का है। बुद्धि में हर समय भगवान और उसके अलौकिक कर्त्तव्य की स्मृति को स्थिर रखने को ही स्मरण कहते हैं। रचयिता (भगवान्) और उसकी रचना (वैकुण्ठ) का स्मरण हर समय बुद्धि में चलता रहे, यही वास्तव में अजपाजाप है।

योगी जीवन बनाने के लिए नियम तथा परहेज़

जब शारीरिक रोग की दवा की जाती है तो स्वास्थ्य के लिए परहेज़ करना भी आवश्यक होता है क्योंकि परहेज के बिना पूरा निरोगी नहीं बन

सकते। वैसे ही मानसिक रोगों को दूर करने के लिए जहाँ ज्ञान की दवाई है, तो वहाँ कुछ परहेज़ भी ज़रूरी हैं जिसके बिना अवस्था ऊँची नहीं बन सकती है। इनमें ब्रह्मचर्य का पालन, अन्न-दोष और संगदोष से बचाव ये मुख्य परहेज़ वर्णनीय हैं।

1. ब्रह्मचर्य का पालन

काम मनुष्य का महाशत्रु है क्योंकि इससे वह निर्बल बनता है। ब्रह्मचर्य का पालन मनुष्य का बहुत बड़ा स्वाभिमान है। वैसे भी कन्या को सौ ब्राह्मणों से श्रेष्ठ माना जाता है, उसकी पूजा की जाती है और घर में सब उसके चरण छूते हैं। परन्तु विवाह के बाद उसका स्वाभिमान टूट जाता है। तब कोई उसके पाँव नहीं छूता बल्कि वह स्वयं दूसरों के पाँव छूने लग जाती है। यह आत्मा के निर्बल बन जाने का चिह्न है। सभी धर्मों में अहिंसा को 'परम-धर्म' और हिंसा को सबसे बड़ा पाप मानते हैं परन्तु यह कोई नहीं जानता कि सबसे बड़ी हिंसा काम कटारी चलाना है क्योंकि इससे आत्मा का हनन होता है। यह शारीरिक हत्या से भी बड़ी हत्या है। योगी बनने के लिए भोगी जीवन को छोड़ना अर्थात् ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना परम अवश्यक है। काम को जीत लेने से अन्य सभी विकारों को जीतना सहज हो जाता है। मनुष्य आजकल के समय में ब्रह्मचर्य में रहना कठिन समझते हैं परन्तु ईश्वरीय ज्ञान और योग की शिक्षा के बल से इस व्रत का पालन सहज हो जाता है। यह भी एक अनुभव में लाई हुई सत्यता है। प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय में ज्ञान और योग की शिक्षा से हज़ारों नर और नारियाँ ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं। ब्रह्मचर्य व्रत से ऊँचा कोई तप नहीं। इस संस्था के सदस्य विवाहित और बाल-बच्चों वाले होते हुए भी पुन: ब्रह्मचर्य व्रत को अपनाकर चल रहे हैं। ब्रह्मचर्य को छोड़ना ही पतित बनना है जो सबसे

बड़ा विकार है। बापू गांधी भी ब्रह्मचर्य धारण करने पर महात्मा कहलाए। आजकल जो 'एक नारी सदा ब्रह्मचारी' की शिक्षा दी जाती है, वह योगी जीवन के बिल्कुल ही विपरीत है। क्योंकि ब्रह्मचर्य का योग से गहरा सम्बन्ध है। वर्तमान कलियुग के अन्त के समय परमात्मा शिव ब्रह्मा-मुख कमल से यह शिक्षा दे रहे हैं कि "हे मनुष्यात्माओ, कल्प के अन्त का यह आपका अन्तिम जन्म है, अब योगी और पूर्ण पवित्र बनो, काम विकार छोड़ो!" अत: पूर्णतया ब्रह्मचारी बनने की ही ब्रह्मामुख से मिली हुई ईश्वरीय मत का आचरण करना हमारा परम कर्त्तव्य है।

(2) अन्नदोष

विकारों की उत्पत्ति मन में होती है। अत: मन की पवित्रता बनाये रखने के लिए अन्न का शुद्ध एवं पवित्र होना ज़रूरी है क्योंकि अन्न का प्रभाव मन पर पड़ता है। गीता में भी भोजन तीन प्रकार का माना गया है – (1) सात्विक, (2) राजसिक, (3) तामसिक। योगी को सदा सात्विक भोजन लेने की ही आज्ञा है। इसलिए अण्डा, माँस, मछली, शराब, सिग्रेट, प्याज, लहसुन इत्यादि तामसी वस्तुओं का प्रयोग उसके लिये निषेध है। चटनी, अचार, खटाई, लाल मिर्च, चाय, गर्म मसाले इत्यादि राजसिक वस्तुएं भी जहाँ तक सम्भव हो, कम प्रयोग में लानी चाहिएँ। हल्के और सादे भोजन में दूध, फल और सब्जी का प्रयोग अधिक उपयुक्त है। अधिक और बोझिल भोजन करने से योग में सुस्ती, आलस्य नींद इत्यादि का प्रभाव आ जाता है। जिस भावना से भोजन तैयार किया जाता है उसका भी मन पर प्रभाव पड़ता है और भोजन बनाने वाले के संस्कार भी भोजन खाने वाले के मन पर असर डालते हैं। अत: योगी को शुद्ध संस्कारों वाले मनुष्य के हाथों से बना हुआ भोजन ही खाना चाहिए। पतित, विकारी और भोगी के द्वारा बनाया हुआ भोजन अशुद्ध है। बाजार

में बनी चीजें खाने से अथवा जहाँ-तहाँ खाने से भी बुद्धि पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अत: भोजन बनाते और खाते समय भी योग में रहना आवश्यक है। खाना शुरू करने से पहले योग में रहकर भोजन पर दृष्टि डालने से और शिव बाबा को भोग लगाने से अन्नदोष से बचाव रहता है और भोजन पवित्र बनता है और पाप की कमाई से बने हुए और पतित के हाथों के पकाए हुए भोजन को खाने से योगी की अवस्था गिर जाती है। इसलिए खान-पान के परहेज पर पूरा ध्यान देना बहुत जरूरी है।

(3) संगदोष

"जैसा संग वैसा रंग"–यह उक्ति भी यथार्थ है क्योंकि बुरी संगत में आने से पुराने एवं अशुद्ध संस्कार पुन: जाग उठते हैं। इसलिए विकारियों की संगत बिल्कुल छोड़ देनी चाहिए। आज संसार में यत्र-तत्र-सर्वत्र माया रूपी रावण का ही राज्य है। सृष्टि की तमोप्रधान अवस्था है। ज्ञान का रंग बड़ी मुश्किल से चढ़ता है क्योंकि अज्ञानियों की संगत में जाने से उनके बुरे संस्कार तुरन्त आ जाते हैं। यदि ऐसे बुरे मनुष्य के साथ किसी कार्यवश रहना भी पड़े तो अपनी पूरी संभाल रखनी चाहिए और शीघ्र ही वहाँ से चले आना चाहिए। सिनेमा अथवा डाँस इत्यादि देखने की आदत को तो बिल्कुल ही छोड़ देना चाहिए। घर में गन्दी तस्वीरें भी नहीं रखनी चाहिएं क्योंकि इनका मन और बुद्धि पर सूक्ष्म प्रभाव पड़ता है। इनका असर भले ही तुरन्त प्रतीत न हो, तो भी सूक्ष्म में संस्कार आ जाते हैं। जैसे हंस का बगुलों के साथ संग शोभा नहीं देता, वैसे ही योगी का भोगी के साथ संग शोभनीय तो नहीं है। फिर भी योगियों को अन्य मनुष्यों के संग में रहना तो पड़ता है। दृष्टि को पवित्र रखने का अभ्यास योगी, अज्ञानियों के संग में रहकर ही कर सकता है, नहीं तो उसे अपनी अवस्था का पता भी कैसे चल सके? तो भी जब तक उसकी अवस्था पक्की न

बन जाए, उसे अपनी चौकसी से रहना आवश्यक है। कच्चे संस्कारों वाले योगाभ्यासी फिसल भी सकते हैं। पक्की अवस्था बनाने के लिए उन्हें बड़ी मेहनत करनी चाहिए। क्योंकि गिरावट में देर नहीं लगती इसलिए संगदोष से संभाल आवश्यक है।

योगी जीवन से लाभ

इस सहज ज्ञान-योग की धारणा से अनेक लाभ हैं–(1) मन सदैव शान्त रहने लगता है, (2) एक-दूसरे को आत्मिक दृष्टि से देखने से विकारी-दृष्टि पवित्र बन जाती है, (3) आपस में रूहानी प्रेम का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, (4) सब एक पिता परमात्मा की अविनाशी सन्तान होने के रूहानी नाते से आपस में भाई-भाई की दृष्टि रखते हैं, (5) हद की दृष्टि बेहद में चली जाती है, (6) योग-अग्नि से जैसे-जैसे पाप भस्म होते जाते हैं, अपने आप में हल्कापन महसूस होने लगता है। (7) चिन्ताएं दूर हो जाती हैं। (8) दिन-प्रतिदिन कर्म-बन्धनों की कड़ियाँ ढीली हो जाती हैं, (9) आखिर कर्म-बन्धन नाममात्र रह जाते हैं जिन्हें तोड़ने में देर नहीं लगती, (10) बड़ी-से बड़ी मुंसीबत भी सूली से काँटा बन जाती है, (11) मन में शुद्ध संकल्प पैदा होने लग जाते हैं, (12) शत्रु से भी घृणा नहीं रहती क्योंकि उसे भी योग का दान देकर उसकी भावनाओं को भी शुद्ध कर लिया जाता है, (13) थोड़ा सोने और बहुत सुबह-सवेरे जागने से विकारी जीवन का अन्त हो जाता है, (14) योग में रहने और काम-काज के लिए काफी समय निकल आता है, (15) खान-पान के परहेज़ और ब्रह्मचर्य में रहने से तथा सांसारिक चिंताओं के दूर होने से आयु लम्बी हो जाती है, (16) स्थायी खुशी आ जाती है, (17) प्रभु-प्रेरणाओं के मिलते रहने से कठिन-से-कठिन समस्याएँ भी सहज ही हल हो जाती हैं, (18) प्रभु-अर्पण जीवन, जिसे मरजीवा-जन्म कहते हैं, बन जाने से

मृत्यु का डर नहीं रहता, **(19)** जीवन में सरलता आ जाती है, **(20)** वाणी में मिठास आ जाता है, **(21)** कठिनाइयों में मनुष्य अडोल और गम्भीर-चित्त रहता है, **(22)** सहनशीलता बढ़ जाती है, **(23)** नम्रता और उदारता आ जाती है, **(24)** हर प्रकार के दिव्य-गुण धारण हो जाते हैं और बुराइयाँ भाग जाती हैं, **(25)** मनुष्य का जीवन काँटे-समान से फूल-समान बन जाता है। अतः यह लाभ मनुष्य इसी वर्तमान जीवन में ही ले सकता है जबकि योगेश्वर परमात्मा स्वयं योग की शिक्षा दे रहे हैं।

एकरस अवस्था

योगी जीवन, मनुष्य जीवन की वह एकरस अवस्था है जिसे कर्मातीत अवस्था कहा जाता है। कर्मातीत अर्थात् विकर्माजीत, वह जीवन जिसमें विकर्म अर्थात् पाप-कर्म न हों। यह दुःख-सुख से न्यारी अवस्था होती है जिसका अर्थ यह है कि दुःखों के आने पर भी मनुष्य अपने-आपको दुःखी नहीं समझता, दुःख सहन कर लेता है। इसी प्रकार वह सुख में भी आपे से बाहर नहीं होता, उसकी अवस्था एक समान रहती है। कभी किसी से राग और द्वेष की भावना नहीं होती, इसीलिये योगी का कमल-पुष्प के समान अनासक्त जीवन गाया हुआ है। योगी हर्ष-शोक, जय-पराजय, स्तुति -निन्दा, हानि-लाभ और सभी अवस्थाओं में एकरस रहता है। ऐसी अवस्था वाले योगी का शरीर सहज छूटता है, उसे मृत्यु के समय कोई कष्ट नहीं होता और वह आत्मा सद्गति को प्राप्त होती है।

योगी कभी देह के धर्मों में नहीं फंसता। वह एक सर्वश्रेष्ठ ईश्वरीय मत पर चलता है जिसको श्रीमत कहा जाता है। इस श्रीमत के अनुसार पवित्रता, अहिंसा, प्रभु-निश्चय, प्रेम, दया, पुरुषार्थ आदि धर्म के मुख्य अंग समझे जाते हैं।

भारत का सच्चा प्राचीन योग